International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(1): 263-266

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(1): 263-266
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 28-11-2020
Accepted: 30-12-2020

डॉ. महावीरप्रसादसारस्वत
प्रोफेसर व्याकरण, श्री गंगा शार्दूल राजकीय आचार्य संस्कृत कॉलेज, बीकानेर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. महावीरप्रसादसारस्वत
प्रोफेसर व्याकरण, श्री गंगा शार्दूल राजकीय आचार्य संस्कृत कॉलेज, बीकानेर, राजस्थान, भारत

वैयाकरणमतमें शब्दविचार

डॉ. महावीरप्रसादसारस्वत

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2021.v7.i1e.1952

प्रस्तावना

वैयाकरणमत में शब्दविचार

चराचर दृष्यमान समग्र संसार नामरूपात्मक है किं वा शब्द–अर्थ रूपात्मक है। इस संसार में एक तत्व है षब्द या नाम तथा दूसरा है अर्थ या रूप। इससे यह स्पष्ट हुआ जो कुछ भी मूर्त या अमूर्त, भौतिक या आत्मिक, श्रवणेन्द्रियेतर, अन्यान्येन्द्रिग्राह्य, चाहे वह प्रत्यक्ष प्रमाण साध्य प्रमेय हो, चाहे अनुमितिगम्य हो अथवा आर्षवचनप्रमाणसिद्ध हो वह समग्र अर्थतत्त्व है इसमें से चक्षुरिन्द्रियग्राह्यजात रूप नामधेय होगा, एतत्सहित समग्र अर्थाभिधेय है। इन सब अर्थात् अर्थ मात्र का अभिधान नाम या शब्द कहलाता है इससे यह सिद्ध हुआ कि जो भी जगज्जात है वह अवष्य ही शब्दवाच्य है किं वा नामवाला है इस संसार में ऐसा कोई पदार्थ है ही नहीं, जो बिना नाम के अवस्थित हो तथा कोई ऐसा नाम नहीं जिसका कोई अर्थ ना होता हो। यद्यपि कुछ ऐसे नाम भी उपलब्ध होते हैं जिनका पुरतो दृष्यमान जगत् में बाह्य अर्थ विद्यमान नहीं होता है। अर्थात व्यवहार जगत् में उनका किसी क्रिया से सम्बन्ध नहीं देखा जाता फिर भी वे शब्द व्यवहार का विषय बनते ही हैं, उसका हेतु क्या है ? यह इसी निबन्ध में आगे यथा अवसर वर्णित होगा।

इससे यह सिद्ध हुआ कि समग्र मूर्तामूर्त ज्ञान शब्द का विषय बनकर ही हमारे सम्मुख या बुद्धि का विषय बनता है। अतएव महान् दार्शनिक परमभाषाविद् भर्तृहरि अपने अनुपम ग्रन्थ वाक्यदीप में कहते है।

''न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके, यः शब्दानुमगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं, सर्वं शब्देन भासते।। '' ....[1]

अर्थात् इस लोक में ऐसा कोई ज्ञान नहीं जो बिना शब्द के होता हो। सम्पूर्ण ज्ञान शब्द से गुम्फित सा है अथवा शब्द से एकाकर हुआ सा प्रतीत होता है। शब्द समग्र ज्ञान किंवा भावों का प्रकाशक हाने के कारण ज्योतिः रूप है। इस संसार में तीन ज्योतियां मानी गई है :– सूर्य अग्नि व शब्द। सूर्य व अग्नि बाह्य जगत के बाह्य पदार्थो को आलोकित करते हैं जबकि यह शब्द रूप तृतीय ज्योति बाह्य व अन्तर उभयविध पदार्थो की प्रकाशिका है। यदि हमारे पास या सांसार में यह शब्द रूपी ज्योति नहीं होती है तो इस संसार की क्या स्थिति होती ? यह मात्र सुनकर या सोचकर ही बड़ी डरावनी स्थिति को अनुभव करने लगता है मानव। कैसे अभिव्यक्त करते आप अपने मन के हर किसी उस दुख भरे या आह्लादपूर्ण भाव को ? क्या यह संसार मूक अथार्त् वाणीविहीन की तरह नहीं होता? क्या हमारा कोई चिन्तन दूसरों तक सम्प्रेषित हो पाता ? अथवा हमारे भीतर कोई भाव प्रकट हो भी पाता ? यदि हम भावशून्य होते तो हमारा क्या स्वरूप होता? हमारे जीवन का उद्देश्य क्या होता ? क्या सारा संसार अधकारमग्न सा नहीं होता? ऐसे काल्पनिक दृश्य से क्या हम कांप नहीं जाते ? कौन किसका क्या है? क्यों है ? कैसे है? कब है ? कहां है ? क्या यह हम जान पाते ? क्या जानने की इच्छा होती ?

इस स्थिति से मुक्ति दिलाने वाला प्रकाश है शब्द या वाक्तत्त्व। महान् संस्कृत विद्वान् व चिन्तक दण्डी शब्दज्योति का महत्त्व इस प्रकार बखान करते है।

''इदमन्धं तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।'' ....[2]

अर्थात् यदि शब्दनामक प्रकाश इस संसार को प्रकाशित नहीं करें तो यह समग्र लोक अन्धकारमय सा हो जाये। अतः शब्द के प्रकाश रूप को स्वीकार किया जाना उचित ही है।

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यह शब्द या वाक्तत्त्व क्या है ? इसका स्वरूप क्या है ? इसका आधार क्या है ? क्या यह पिण्डरूप दृश्यमान पदार्थ है अथवा अन्य कोई रूप है इसका ?

महावैयाकरणों ने इसे ब्रह्मरूप में स्वीकार किया है। समग्र संसार का विवर्तन इस अनादि–अनन्त अखण्ड शब्दब्रह्म से हुआ है जैसे वेदान्तमतानुसार सृष्टि की उत्पत्ति माया के सहारे ब्रह्म से होती है। यह संसार शब्दरूप का परिणाम नहीं बल्कि विवर्त रूप है। जैसा कि भर्तृहरि कहते है :–

''अनादिनिधनं ब्रह्म, शब्दतत्त्वं यदक्षरम्''
विवर्ततेऽर्थभावेन, प्रक्रिया जगतो यतः। ....[3]

मनुष्य की बुद्धि में पाया जाने वाला समग्र ज्ञान शब्दरूप भी है तथा अर्थरूप भी है या कहें कि ज्ञान के पार्श्वद्वय है शब्द व अर्थ। हम जब कुछ भी बोलना चाहते है तब पूर्व में हमारी बुद्धिस्थित अर्थ को विषय बनाते है कि एतदर्थक विवक्षा होनी चाहिए। अर्थात् पहले वक्ता की बुद्धि अर्थविषयक होगी उस अर्थ को सम्मुख उपस्थित व्यक्ति के लिए ग्राह्य बनानें हेतु विवक्षा होगी। चूंकि उस बुद्धि में उस अर्थ के साथ ही दूसरा पार्श्व शब्द भी पूर्वतः विद्यमान है। बुद्धि उस शब्द को सामनें रखकर व्यापार करती है, वह शब्द पिण्ड रूप नहीं है बल्कि जैसे बौद्ध अर्थ केवल भावात्मक है वैसे ही बौद्ध शब्द भी भावात्मक ही है, उसे परबुद्धि में उद्भासित करनें हेतु बुद्धि से प्रेरित होकर मन कायाग्नि को आहत करता है, वह कायाग्नि शरीरस्थ वायु (प्राण) को प्रेरित करता है, कायाग्नि प्रेरित प्राण मूलचक्राधार से ऊपर उठता हुआ मुखदेशस्थ भिन्न–भिन्न कण्ठादिस्थानों से टकराता हुआ भिन्न–भिन्न ध्वनियाँ उत्पन्न करता है, यह ध्वनि बुद्धिस्थ अर्थप्रेरित शब्द की वाहिका बनती है अथवा कहे की इस ध्वनि के द्वारा वह शब्द अभिव्यक्त होता है। इससे यह तथ्य निकला की शब्द अभिव्यंग्य हुआ तथा ध्वनि अभिव्यक्ति का साधन है, न कि शब्द। शब्द तो बुद्धि में स्थित ज्ञान का ही रूप कोई विशिष्ट तत्त्व है, जो बौद्धस्तर पर अर्थ से अभिन्न (किन्तु आमव्यवहार में भिन्न सा प्रतीत) हैं, यह वक्ता व श्रोता दोनों के बुद्धि में विद्यमान है। जब ध्वनि वक्ता के मुखविवर से निकलकर श्रोता की कर्णनालिका से गृहीत होती हुई उसकी बुद्धि का विषय बनती है तब वह उस श्रोता की बुद्धि में पूर्वतः विद्यमान शब्द को जागृत कर देती है, चूंकि वहा भी शब्द अर्थ के साथ अभिन्नता को लिए हुए विद्यमान है, अतः अर्थ श्रोता के बुद्धिपटल पर उभर आता है, यहीं है अर्थग्रहण व शब्द के अभिव्यक्त होनें की प्रक्रिया। इस प्रक्रिया में अर्थ शब्द का कारण बनता है व शब्द भी अर्थ का कारण बनता है, दोनों एक दूसरे के कारण बनते है। कहीं ध्वनि सुनकर उससे बुद्धि में जागृत शब्द से अर्थाभिव्यक्ति होती है, कहीं अर्थ को बुद्धि का विषय बनाकर शब्द की अभिव्यक्ति हो जाती है। बौद्धस्तर पर अर्थाभिन्न शब्द या शब्दाभिन्न अर्थ एक–अखण्ड–निरवय होता है, उसके खण्ड सम्भव नहीं है, उसकी एकरूपता ही विद्वन्मान्य है। इसी बौद्ध शब्द को स्फोटनाम से विद्वानों ने मान्यता दी है। स्फोट नाम इसलिए है कि इससे अर्थ का स्फोट होता है, अर्थात् अर्थ स्फुटित = प्रकाशित होता है :– "स्फुटत्यर्थो यस्मात् इति स्फोटः।''

अर्थाभिन्नशब्द की यह बौद्धस्थिति इसलिए अखण्ड कहीं जाती है कि अर्थविषयक् बौद्ध ज्ञान एक व अखण्ड निरवयव पाया जाता है। यथा एक घटना विशेष रामायणविषयक हमारा जो बुद्धिस्थ ज्ञान है, उस ज्ञान को भागो में नहीं बांटा जा सकता, हम नहीं कह सकते कि इस ज्ञान के अंशरूप अर्थ का वाचक बुद्धि में स्थित इतना शब्दांश है, और इतने का इतना। वहाँ उस ज्ञान का विषय अर्थ भी अखण्ड है और उसका विषय शब्द भी अखण्ड है। समग्र अर्थ का वाचक समग्र शब्द है तथा वह ज्ञान भी अर्थ–शब्द विषयक होनें के कारण अखण्ड व निरवयव ही है। यही शब्द का वास्तविक स्वरूप है, तभी तो बाह्यार्थशून्य होनें के बावजूद शशशृगं, खपुष्प, वन्ध्यापुत्र आदि शब्दों का प्रयोग देखा जाता है। यद्यपि इन शब्दों का बाह्यार्थ संसार में विद्यमान नहीं है, क्योंकि खरगोश के सींग, आकाश का पुष्प, बांझ का पुत्र कभी किसी ने संसार में नहीं देखा, किन्तु फिर भी इन शब्दों का प्रयोग इस संसार में किया जाता है और श्रोता इनके अर्थ को समझते भी हैं।

अब यहाँ यह प्रश्न होता है कि फिर यह अर्थ ज्ञात होता कैसे है ? जबकि यह अर्थ (वस्तु) लोक में है ही नहीं। इसका उत्तर यह समझना चाहिए की इनका बौद्धार्थ अर्थात बुद्धि में स्थित अर्थ के कारण से ये सार्थक बनते है। उसी अर्थ के कारण लोगो को इनका अर्थ ज्ञात हो जाता है। इस प्रकार बाह्यार्थशून्य किन्तु बुद्धिस्थ अर्थ से सम्बद्ध शब्दों के प्रयोग का यह सुन्दर पद्य देखने योग्य है:–

''एष वन्ध्यासुतो याति, खपुष्पकृतशेखरः।
कुर्मक्षीरचये स्नातः शशशृंगधनुर्धरः।।'' ....[4]

अर्थात् कच्छप के दूध समूह में नहाया हुआ, आकाश के पुष्प का शिरोभूषण बनाया या धारण किया हुआ, खरगोस के सींग का जिसने धनुष धारण किया हुआ है, ऐसा यह वन्ध्यापुत्र जा रहा है। जगत् में इस प्रकार की ये वस्तुए देखने को नहीं मिलती, फिर भी श्रोता या पाठक इन बाह्यार्थशून्य प्रत्येक शब्द का अर्थ जान जाता है, यह सब इन शब्दों से सम्बद्ध बौद्ध शब्दार्थ का ही चमत्कार है, कि व्यक्ति सहज ही अर्थज्ञान से सम्पन्न हो जाता है।

जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है कि शब्द बौद्ध है, उसकी अभिव्यक्ति ध्वनि के द्वारा होती है वह ध्वनि अभिव्यंजक है तथा शब्द (स्फोट) व्यंग्य है, किन्तु लोक में ध्वनि को भी शब्द माना जाता है। आम आदमी ध्वनि को शब्द समझता है इसीलिए लोक की इस व्यवहृति को ध्यान में रखकर महभाष्यकार भगवान पतंजलि ने भी शब्द की अपर परिभाषा तदनुरूप ही की है :–

प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्दः।'' (महाभाष्य) ....[5]

यहा उन्होंने लोके अर्थात् लोक में ध्वनि भी शब्द है ऐसा कहा है, यदि सर्वत्र (लोक व शास्त्र) ध्वनि की शब्द रूप में मान्यता होती तो ''लोके'' ऐसा विशेषण देने की आवश्यकता नहीं होती। नैयायिक ध्वनि को शब्द मानते है अतः ध्वनि की अनित्यता के कारण उनका ''शब्द भी अनित्य है,'' ऐसे मन्तव्य के प्रति आग्रह रहता है। वैयाकरण तो शब्द को नित्य मानता है, उसका अभिव्यंजक ध्वनि अनित्य है।

चूंकि शब्द अर्थ से अभिन्न है इसलिए शब्द व अर्थ दोनों ही नित्य है तथा इनका सम्बन्ध भी नित्य है। भगवान पतंजलि कहते है "सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे"। भर्तृहरि भी वाक्यपदीय में लिखते है:–

''नित्याः शब्दार्थसम्बन्धाः, तत्राम्नाताः महर्षिभिः।
सूत्राणां सानुतन्त्राणां, भाष्याणां च प्रणेतृभिः।।''....[6]

महाभाष्यकार पतंजलि शब्द की नित्यता को बड़े सुन्दर तर्को से सिद्ध करते हैं। वे कहते हैं जो अनित्य पदार्थ होता है उसकी उत्पत्ति या प्राप्ति हेतु यत्न किया जाता है, नित्य तो सर्वदा प्राप्त है अतः उसकी उत्पत्ति नहीं की जा सकती वह तो अनुत्पाद्य होता है। यथा घट पदार्थ अनित्य है उसे प्राप्त करने के लिए व्यक्ति कुम्भकार के पास जाकर कहता है 'घट मे कुरु' अर्थात मेरे लिए घट बनाईयें मैं उसे काम में लूंगा। किन्तु शब्द के विषय में ऐसा नहीं है। कोई भी व्यक्ति वैयाकरण कुल में जाकर नहीं कहता कि मेरे लिए शब्द बनाईये, मैं उन्हें प्रयुक्त करूंगा, अपितु वह स्वंय ही शब्दों का प्रयोग करनें लगता हैं। इससे सिद्ध है कि शब्द उसकी बुद्धि में पूर्वतः विद्यमान है जो कि नित्य है। यही नहीं

प्रवाह–नित्यता से भी शब्द की नित्यता सिद्ध होती है। अनादि काल से हम शब्दों को प्रयोग करते आये हैं, कोई नहीं जानता कि शब्दों का प्रयोग कब से शुरू हुआ है, अतः शब्द नित्य है। यही सरणि अर्थ के विषय में प्रयुक्त होती है। गवादि अर्थों के लिए अनादिकाल से गो आदि शब्दों का प्रयोग होता आ रहा है, यह नहीं बताया जा सकता कि गवादि अर्थो के लिए गवादि शब्दों का प्रयोग कब से शुरू हुआ, अतः अर्थ भी नित्य है। जब दोनों पदार्थ नित्य है तो इनका सम्बन्ध भी नित्य ही होगा।

ध्वनि में शब्दत्व का आरोप

हम यह सिद्ध कर चुके है कि शब्द नित्य है तथा बुद्धिस्थ है, वक्ता इसे ध्वनि के द्वारा अभिव्यक्त करता है अतः ध्वनि शब्द की अभिव्यंजिका है, तथा शब्द स्वंय व्यंग्य है। यह भी ज्ञात है कि शब्द नित्य है तथा ध्वनि अनित्य है, किन्तु इनमें इतना तादात्म्य हो गया है कि ध्वनि को ही शब्द कहा जाने लगा, यह जनसाधारण की स्थिति है। आम आदमी ध्वनि को ही शब्द मानने लगा है तभी तो ध्वनि करते हुए किसी बालक को देखकर कहा जाता है – ''शब्द मत करो। यह बच्चा बड़ा शब्द करनें वाला है। इत्यादि इत्यादि।'' इससे यह स्पष्ट हुआ कि जनसाधारण ध्वनि को शब्द इसलिए समझता है कि शब्द का ध्वनिसमानानुपाती ज्ञान होता है या अभिव्यंजन होता है। इसमें कुछ भी कालकृतव्यधान अनुभूत नहीं होता। फलतः बिना किसी क्षणिक विलम्ब के ध्वनिसमाकालानुपाती शब्दाभिव्यंजनवश ध्वनि को ही शब्द माना जाने लगा।

जैसा कि पूर्व में वर्णित है कि बौद्धशब्द, जो कि स्फोटनामा है, एक, अखण्ड, निरवयव, निर्भेद है, उसके भेद नहीं होते, उसमें पौर्वापर्य व क्रमवत्ता आदि गुण नहीं पाये जाते , वह तो एकाकार व अखण्ड है किन्तु उसका अभिव्यंजक ध्वनि सखण्ड, सावयव, भेदभान, पौर्वापर्ययुक्त व सक्रम है। चूंकि वह अखण्ड स्फोटात्मक शब्द ध्वनि से अभिव्यक्त होता है, अतः ध्वनि के धर्मो का उसमें भी आरोप कर लिया जाता है अथवा कहें कि ध्वनि के धर्म उसमें भासित होनें लगते है।

बुद्धिस्थ अर्थविषयक शब्द का विवक्षु जब ध्वनि के द्वारा उसे अभिव्यक्त करता है तो वह ध्वनि कभी वर्णात्मक हो सकती है, कहीं पदात्मक हो सकती है तथा कहीं वाक्यात्मक होती है। बुद्धिपटल पर आया हुआ विशेष ज्ञान वर्णात्मक ध्वनि से भी प्रकट होनें योग्य हो सकता है, पदात्मक ध्वनि से अभिव्यक्त होनें योग्य हो सकता है तथा रामायणादिविषयक ज्ञान वाक्यात्मक या महावाक्यात्मक ध्वनि द्वारा अभिव्यक्त होनें योग्य हो सकता है। यद्यपि तत्तज्ज्ञानविषयक शब्द एक व अखण्ड ही है, उसमें क्रमवत्ता व भागवत्ता नहीं है और न हीं हम वहाँ ऐसा कुछ पाते है, किन्तु चूंकि ध्वनि विभिन्न स्थानों से टकराकर उत्पन्न होती है अतः उसमें निश्चय ही भागवत्ता होगी, क्रमवत्ता होगी, सावयवता होगी, उच्चता या निम्नता होगी, अल्पता या महत्ता होगी। चूंकि शब्द उसके माध्यम से अभिव्यक्त होता है अतः उस शब्द में ध्वनि के धर्मो का आरोपण हो जाता है, फलतः हम शब्द को भी वर्णात्मकता, पदात्मकता व वाक्यात्मकता दे बैठते है, हम वर्णात्मक शब्द, पदात्मक शब्द व वाक्यात्मक शब्द कह देते है। इस प्रकार शब्द में पौर्वापर्य, क्रमवत्ता, ह्रस्वता, दीर्घता, प्लुतता, तारता, मन्दता, उच्चता का अनुभव करनें लगते है। यह सब वैसे ही होता है जैसे एक ही मुख को जब हम काँच में देखते हैं तो वह यथाकृति दिखता है, मणि में देखने पर व चपटा व गोल दिखता है, उसे ही चमकती हुई तलवार में देखने वर वह लम्बा दिखने लगता है। यद्यपि मुंह वहीं है एक ही है, भिन्न नहीं है, किन्तु उपाधिभेद से भिन्न–भिन्न प्रतीत होता है। अथवा जैसे कोई मणि के पास में पुष्प रखने पर वह तत्तद्वर्ण की दिखने लगती है, यह मणि एकरूप ही है किन्तु पास रहने वाली उपाधि का धर्म उसमें भासित होनें लगता है। इसी प्रकार ध्वनि के वर्णात्मकता आदि रूप एक अखण्ड निरवयव शब्द में प्रतीत होने लगते है और उसे उन रूपों में हम स्वीकार करने लगते है।

क्योंकि व्यवहार ध्वनि से ही होता है। अतः जनसाधारण के लिए इसे शब्द मानना उचित ही है, ध्वनि के माध्यम से वक्ता अपने अभिधेय या भावों को श्रोता के बुद्धिपटल पर उकेरता है, अतः वही शब्द के रूप में उसे स्वीकार्य भी होगा। जब तक श्रोता को पूर्ण संतुष्टि नहीं होती तब तक वक्ता का व्यापार सफल नहीं होता, वक्ता के बोलनें या कथन का साफल्य इसी में है कि श्रोता को निराकांक्ष अर्थ की उपलब्धि हो जायें।

निराकांक्ष अर्थोपलब्धि वाक्य से ही

श्रोता को अर्थबोध हो जाये यही शब्द के प्रयोग का प्रयोजन होता है ''अर्थसम्प्रत्यायनाय हि शब्दः प्रजुज्यते''....[7]

जैसा कि अभी उपर वर्णित है कि ''शब्द'' शब्द ध्वनि के लिए भी प्रयुक्त होता है तथा सन्धि, समास, पूर्वप्रयोग, परप्रयोग आदि सभी कार्य ध्वन्यात्मक शब्द में ही सम्भव भी है, बौद्ध शब्द में नहीं। दूरस्थ व्यक्ति के लिए सम्बोधन में वाक्य की टि को प्लुतविधान का पाणिनि का निर्देश ध्वन्यात्मक वाक्य में ही सम्भव हो पायेगा। बौद्ध शब्द के द्वारा बुद्धिस्थ व्यक्ति को सम्बोधित किया जाना असम्भव ही है, उसका अभिमुखीकरण ध्वनिरूप शब्द या वाक्य से हो पाता है। सम्पूर्ण पदसाधनप्रक्रिया ध्वन्यात्मकशब्दाश्रित ही सम्भव हो पायेगी। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि हिन्दी आदि भाषाओं में शब्द शब्द किसी पद ;वतकद्ध के लिए ही प्रयुक्त होता है। किन्तु संस्कृत के सन्दर्भ में यदि देखा जाये तो यह वर्ण, पद व वाक्य, यहाँ तक की महावाक्य के लिए प्रयुक्त होता है क्योंकि बौद्ध शब्द (स्फोट) की अभिव्यंजक ध्वनि के लिए भी शब्दत्व का आरोप किया गया है तथा ध्वनि वर्णात्मक भी हो सकती है, पदात्मक या वाक्यात्मक भी हो सकती है। अतः यहॉ ''शब्द'' शब्द वर्ण, पद, वाक्य के लिए समान रूप से प्रयुक्त होता है।

पण्डित राज जगन्नाथ अपने शिखरग्रन्थ रसगंगाधर में काव्यलक्षण बताते हुए कहते है ''रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्''..[8] अर्थात् रमणीयार्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द काव्य कहलाता है। यहा शब्द को काव्य कहा गया है। यदि ''शब्द'' शब्द को पद (Word) अर्थ में समझा जाये तो पण्डितराज की बात सिद्ध नहीं हो पायेगी। क्योंकि कभी भी एक पद ;वतकद्ध को काव्यरूप में स्वीकृति पाते हुए किसी ने न देखा, न कोई उसे उस रूप में स्वीकृति देगा भी । निश्चय ही वाक्यसमूह महावाक्य ही काव्यकोटि में आयेगा, उसी में रमणीयार्थप्रतिपादकत्व भी सम्भव होगा। इससे यह स्पष्टतर सिद्ध हुआ कि ''शब्द'' शब्द यहाँ महावाक्य के लिए प्रयुक्त हुआ है और होना भी चाहिए।

शब्द प्रयोग का प्रयोजन अर्थसम्प्रत्यायन बताया गया है। यह अर्थसम्प्रत्यायन किस प्रकार के शब्द से सम्भव है ? यद्यपि देवदत्तः आदि पदरूप शब्द से अर्थप्रत्यायन तो होता है किन्तु इससे साकांक्ष अर्थबोध होगा, निरांकाक्ष नहीं । यहाँ देवदत्तः पदको सुनते ही अन्य पदों की आकांक्षा उदित होने लगती है, क्या किया उसने ? किसको, कहा, क्यों, कैसे, किसके लिए, किससे इत्यादि अनेक प्रश्न उठते लगते हैं। अतः पद से अर्थप्रत्यायन तो होता है किन्तु निराकांक्ष नहीं साकांक्ष होता है। जब तक निरांकाक्ष अर्थ की उपलब्धि न हो तब तक श्रोता को शान्ति नहीं मिलती उसकी और जिज्ञासा बनी रहती है, इस जिज्ञासा या आकांक्षा की पूर्ति वाक्य से ही होती है अतः वाक्य को भाषा की पूर्ण इकाई माना जाना चाहिए। पद पूर्ण इकाई का दर्जा नही पा सकता। क्योंकि उससे होने वाला बोध अपूर्ण है, श्रोता के मन में सन्तोष उत्पन्न नहीं होता इससे।

वास्तव में अर्थबोध या शक्तिग्रह भी वाक्य में ही सम्भव है। अकेले पद में शक्तिग्रह सम्भव नहीं हो सकता। अर्थपरिसमाप्ति अर्थात् अर्थ की सम्यक् प्राप्ति वाक्य से ही है। अतएव न्यायभाष्य–कार भी इस प्रकार कहते है ''पदसमूहो वाक्यमर्थपरिसमाप्तौ''....[9] अर्थात् वाक्य ही निराकांक्ष अर्थ प्राप्ति करानें में समर्थ होता है।

अब प्रश्न यह है कि वाक्य किसे कहते है ? क्या पदसमूह ही वाक्य है? यदि ऐसा हो तो हाथी, घोडा, ऊंट, गाय, मनुष्य यह पदसमूह भी वाक्य बन जाना चाहिए, किन्तु इसे किसी ने वाक्य नहीं माना। तो फिर वाक्य क्या है ? किसी ने कहा– पदस्परान्वितपदार्थबोधक पदसमूह वाक्य है, अथवा आकांक्षा, योग्यता, आसत्तियुक्त पदसमूह वाक्य है, ऐसा भी किसी का मन्तव्य है। विभिन्न भाषाशास्त्रियों ने अनेक प्राकार के वाक्य लक्षण या वाक्य की परिभाषाऐं दी। इन सब प्रकार के वाक्यलक्षणों में एक वाक्यलक्षण बहुत ही सुन्दर व संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित है, जो कि महाभाष्याकर पतंजलि ने दिया है– ''एकतिङ् वाक्यम्'' अर्थात् एक क्रियापद जहाँ पर प्रधान हो ऐसा पदसमूह वाक्य कहलाता है। पदसमूह की बात तो सभी कर रहे है किन्तु एक क्रियावाचक पद प्रधान हो ऐसी बात किसी ने नहीं कही। वास्तव में विना क्रियावाचक पद के वाक्य उसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार बिना प्राणों के जीवन असम्भव है। अतः यह कहना चाहिए कि क्रिया वाक्य का प्राणतत्त्व होता है। यदि ''देवदत्तः द्विचक्रिकया नगरात् ग्रामम्'' इतना सुबन्तचय, जो कि अर्थ की दृष्टि से साकांक्ष है योग्यतापन्न भी है, आसत्तियुक्त भी है, को रखकर वाक्य के रूप में देखने की कोशिश की जाये तो निराकांक्ष अर्थ नहीं मिल पाता मन में एक अधूरापन या रिक्तता का अनुभव होनें लगता है, कुछ अपूर्णता प्रतीत होती है। यदि यहाँ गच्छति अथवा गच्छन् मृतः आदि कोई क्रियापद रख दिया जाये तो निराकांक्ष अर्थ की प्राप्ति हो जाती है।

यद्यपि कहीं कहीं एक पद से भी निराकांक्ष अर्थ की उपलब्धि देखी जाती है। यथा किसी को आते हुए देखकर 'क' व्यक्ति 'ख' से पूछे कोऽयम् ? यह कौन हैं ? तुरन्त ही 'ख' उत्तर देता है देवदत्त या चैत्र आदि। यहाँ यद्यपि प्रश्नवाक्य में क्रियापद सुनाई नहीं पड़ रहा है तथापि श्रोता 'ख' को निराकांक्ष अर्थ उपलब्ध हो जाता है तथा उसके द्वारा प्रदत्त उत्तर देवदत्त आदि में ध्वन्यात्मक दृष्टि से केवल पदात्मकता है फिर भी प्रश्नकर्ता को उसके निराकांक्ष अर्थ उपलब्ध हो जाता है। यह इसलिए हो रहा है कि श्रोता ने क्रियापद का बौद्धस्तर पर अध्याहार कर लिया, श्रुतध्वनि के द्वारा भी अर्थबोध तो बुद्धि में ही होना है, अतः बौद्ध स्तर पर श्रोता को 'कोऽयमस्ति' 'देवदत्तोऽस्ति' अथवा 'कोऽमायाति' 'देवदत्तःआयति' इस प्रकार का क्रियापदयुक्त वाक्य ही उपस्थित होता है। अतः निराकांक्ष अर्थबोध हो जाता है। इस प्रकार क्रियापद की ध्वनि न सुनाई पड़ने के बावजूद ऐसे पद को भी वाक्य ही माना जायेगा क्योंकि वह पद गतार्थक्रिय हो जाता है। अतः महान् भाषादर्शनविद् भर्तृहरि अपने वाक्यपदीय ग्रन्थ में वाक्यकाण्ड में लिखते है –

''वाक्यं तदपि मन्यन्ते यत्पदं चरितक्रियम्।''....[10]

सान्दर्भिक

1. वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड श्लोक न. 123
2. आचार्य दण्डी
3. वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड श्लोक न. 1
4. परमलघुमंजूषा शक्तिनिरूपण
5. महाभाष्यपस्पशाह्निक
6. वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड श्लोक न. 23
7. पातंजल महाभाष्य
8. रसगगांधर काव्यलक्षण
9. वात्स्यायनकृत न्यायभास्य
10. वाक्यपदीय वाक्यकाण्ड